मि ल न

(खण्ड- काव्य)

श्री रामनरेश त्रिपाठी

हि न्दी म न्दि र, प्र या ग

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186338

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 T84M Accession No. H 5

Author त्रिपाठी, रामनरेश

Title मिलन

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक,
बृहस्पति उपाध्याय
हिन्दी मन्दिर
प्रयाग

तेरहवां संस्करण
मूल्य
बारह आना

मुद्रक,
अमरचन्द
राजहंस प्रेस
दिल्ली, २८–४७ ।

मूल कथा

पहला सर्ग

रात का समय था; तपोवन में चारों ओर निस्तब्धता थी; तारागण चुपचाप झिलमिल प्रकाश कर रहे थे; केवल एक कुटीर दीपक के प्रकाश में जाग रहा था।

कुटीर में दो जन थे—एक युवक, एक युवती। युवक समाज की सेवा करने के लिए वन को छोड़कर बस्ती में जाना चाहता था। युवती ने पहले उसे रोका; पर जब युवक ने कहा कि संसार की सेवा करना ही मनुष्यता है और वह अवश्य जायगा, तब युवती ने भी उसके साथ जाने की इच्छा प्रकट की।

युवक ने स्वीकार कर लिया। उसके आदेश से युवती ने पुरुष का-सा भेस बदला और वे दोनों प्रभात होते-होते कुटी से निकल पड़े और एक नदी के तट पर पहुँचे।

नदी-तट पर एक वृक्ष से एक नाव बँधी थी। उन्होंने नाव खोल ली और उसे चलाकर वे उस पार जाने लगे। नाव नदी के बीच में पहुँची ही थी कि एक बड़ा तूफान आया और नाव डूबने लगी। युवक ने कहा—खेद है इस शरीर से देश का कष्ट मैं दूर नहीं कर सका।

युवक-युवती एक-दूसरे के गले में बाँहें डाले हुए नाव के साथ डूब गये।

दूसरा सर्ग

प्रातःकाल का समय था। नदी में एक मुनि स्नान कर रहे थे। धारा में थोड़ी दूर पर उन्हें एक लाश बहती हुई दिखाई दी। कौतूहलवश उन्होंने लाश पकड़ ली। बाहर लाकर उन्होंने देखा तो वह एक युवती की लाश थी। मुनि उसे उठाकर कुटी में ले गये। वहाँ उपचार करने से युवती की साँस चलने लगी और वह जी उठी।

होश में आने पर उसने मुनि से पूछा—मेरे प्राणनाथ कहाँ हैं ? हम दोनों साथ ही डूबे थे।

मुनि उसे कुटी में ठहरने के लिए कहकर युवक की खोज में चले।

तीसरा सर्ग

थोड़ी ही दूर जाने पर धारा में बहती हुई युवक की लाश भी मिल गई। मुनि बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने लाश को निकाला और कुटी में ले जाकर उसे भी जीवित किया; पर उनके आने से पहले ही युवती, जिसका नाम विजया था, कुटी छोड़कर बन में चली गई थी।

युवक की साँस तो चलने लगी; पर वह बहुत देर तक मूर्च्छित ही पड़ा रहा।

विजया को कुटी में न पाकर मुनि को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने बहुत खोज की, पर वह न मिली।

मुनि फिर युवक के पास आ बैठे। वे युवक का बलिष्ट शरीर देखकर मन-ही-मन कहने लगे—अहा, इसके शरीर का गठन देखने से यह कोई महान् पुरुष मालूम होता है। अर्द्ध चन्द्र के समान चिकना और चमकदार माथा और इसके मुँह का गंभीर भाव बतलाता है कि यह कोई संयमी पुरुष है।

मुनि यह सोच ही रहे थे कि इतने में युवक स्वप्न में प्रलाप करने लगा—विजया ! तुमने यह बड़ा सुन्दर प्रश्न मुझसे पूछा है कि मैं तुमको अधिक प्यार करता हूँ, या स्वदेश को ? इसके उत्तर में मैं तुमको कहता हूँ कि यदि तुम स्वदेश की सेवा में मेरे साथ सदा रहो तो तुमसे बढ़कर संसार में मुझे कोई प्यारा नहीं।

यह कहकर युवक चुप हो रहा। मुनि उसे सुनकर पुलकित हो उठे। उनकी आँखों में हर्ष के आँसू आगये। उन्होंने ईश्वर को प्रणाम किया, जिसने ऐसा गुणवान् देश-भक्त उन्हें दिया।

कुछ घण्टों में युवक की शिथिलता दूर हुई और वह उठ बैठा। उसने मुनि को सामने देखकर प्रणाम किया और पूछा—हे मुनि, मैं

कहाँ हूँ ? किसने मुझे दया करके यहाँ विश्राम दिया है ?

मुनि ने प्रातःकाल की सब घटना उसे कह सुनाई; पर विजया के मिलने, और फिर खो जाने की बात उसे इसलिए नहीं बताई कि शायद उसे सुनकर उसका चित्त विरह-विक्षिप्त न हो जाय।

मुनि ने युवक से उसका परिचय पूछा। तब युवक एक गहरी साँस लेकर कहने लगा—हे मुनि ! आपने मेरी प्राण-रक्षा की है। इससे आपसे कोई बात छिपाना मैं नहीं चाहता। मेरी कहानी बड़ी लम्बी है। संक्षेप में मैं बतलाता हूँ। मेरे पिता मिलन नगर के निवासी थे। विदेशियों के अत्याचार से प्रजा में भयानक हाहाकार मचा हुआ था। पिता ने प्रजा का पक्ष लेकर हाकिमों तक उनकी दुःख-कथा पहुँचाई; पर परिणाम उलटा हुआ और वे सरकार की नज़रों में खटकने लगे। उन पर झूठे अभियोग लगाये गये और न्यायालय से उन्हें दण्ड दिलाया गया। इससे उनका चित्त बहुत खिन्न हुआ। एक दिन उन्होंने मुझे अपने एक मित्र मुनि के पास, जो एक जङ्गल में रहते थे, पहुँचाकर घर छोड़ दिया। पता नहीं, वह कहाँ चले गये। जाते समय वह मुनि के पास मेरे लिए यह संदेश छोड़ गये थे कि वयस्क होने पर मुनि मुझे बता दें कि मिलन को विदेशियों के चंगुल से स्वतंत्र बनाना ही मेरे जीवन का लक्ष्य हो; ऐसी मेरे पिता की इच्छा थी। मैं उनका एकलौता पुत्र हूँ।

मैं उस समय बहुत छोटा था। मुनि के आश्रम में मैं रहने लगा। मुनि मुझे शिक्षा देने लगे। मुनि के आश्रम में एक कन्या भी थी। वह मुझसे उम्र में छोटी थी। हम दोनों साथ-ही-साथ खेलते, खाते और पढ़ते-लिखते थे।

कुछ दिनों के उपरांत जब मुनि का अन्तिम समय निकट आया, तब मुनि ने मुझे पास बुलाया और मुझसे कन्या का पाणि-ग्रहण कराके उन्होंने मेरे पिता का अंतिम संदेश मुझे कह सुनाया। इसके पश्चात् मुनि ने शरीर त्याग दिया। हम दोनों अनाथ होगये।

कन्या का नाम विजया था। यद्यपि मैंने कन्या का पाणि-ग्रहण किया

था; पर मैं उसके साथ गृहस्थ की तरह नहीं रहता था, क्योंकि पिता की आज्ञा के अनुसार मेरे जीवन का उद्देश्य तो केवल मिलन को स्वतंत्र करना था, अतएव मैंने वन छोड़कर बस्ती में आने का विचार किया।

विजया भी मेरे साथ कुटी से रवाना हुई। हम दोनों एक नाव पर नदी को पार कर रहे थे कि यकायक तूफान आया और नाव डूब गई। साथ ही हम दोनों भी नदी में डूब गये। उसके बाद की बात आपको मालूम ही है।

यह कहकर युवक कुछ देर के लिए चुप हो गया। मुनि की आँखें उमड़ आईं, हृदय प्रेम के प्रभाव से भर गया।

युवक फिर कहने लगा—हे मुने! मैं किस प्रकार देश की सेवा कर सकता हूँ, कृपया मुझे अपना अनुभव प्रदान कीजिये।

मुनि ने कहा—हे पुत्र! देश की दशा बड़ी ही शोचनीय है। उसके उद्धार में तुमको बहुत कष्ट झेलने पड़ेंगे। फिर भी तुमको अपना कर्त्तव्य-पालन करना ही चाहिये। आत्म-बल पर सदा भरोसा रखना; कभी असावधान न होना; जैसा तुम दूसरों को बनाना चाहते हो, वैसा स्वयं बनना; जनता का मन उन्नत करते रहना; उसका मिथ्या-भय दूर करना; और साहसी संयमी और योग्य-युवकों को चुन-चुनकर संग्रह करते रहना कार्यारंभ कर देने पर कर्त्तव्य स्वयं तुम्हारे सामने आकर उपस्थित होगा। चलो, मैं भी इसी समय यह कुटी छोड़ता हूँ, अवसर आने पर तुमसे फिर मिलूँगा। हे पुत्र! तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो; तुम सुयश की अमर-गोद में आनन्द प्राप्त करो।

चौथा सर्ग

प्रेम में पगली विजया कई महीने तक भटकती रही। वह एक दिन एक गाँव में जा पहुँची। जाड़े के दिन थे, प्रातःकाल का समय था। गाँव में भयानक उदासीनता छाई हुई थी। ग़रीब लोग सरदी के मारे घरों के अन्दर बैठे काँप रहे थे। विजया एक घर के सामने गई। उसने देखा कि एक कंकाल-स्वरूप मनुष्य घुटनों पर चिबुक रखे, दोनों हाथों

से पैरों को जकड़े हुए बैठा थर-थर काँप रहा है। वह सूर्योदय की राह देख रहा है। इतने में बर्फीली हवा चलने लगी। यह बेचारा और सिकुड़ गया। बाहर उसका यह हाल था, भीतर गरीबनी स्त्री मुरझाये हुए फूल की तरह एक बच्चे को गोद में चिपकाये हुए उदास बैठी थी। वे दोनों घास की चटाई ओढ़ते थे और घास की चटाई ही बिछाते थे। वह नर-कंकाल चटाई के नीचे से निकलकर धूप के लिए बाहर आ बैठा था।

विजया उस गरीब के पास जा पहुँची। गरीब विजया का हाल देखकर दया से द्रवीभूत होगया। उसने पड़ोस से आग लाकर जला दी और घर में से घास की चटाई लाकर विजया को उढ़ा दी। विजया उस ग़रीब का त्याग देखकर मुग्ध हो गई। उसने मन में कहा—अहा! यह कितना ग़रीब आदमी है, पर इसका हृदय कैसा महान् है।

उसने उस गरीब का हाल पूछना शुरू किया। ग़रीब ने कहा—मैं एक किसान हूँ। स्त्री और एक बालक को लेकर हम घर में केवल तीन ही प्राणी हैं। खेती करके किसी तरह जीवन चला लेते हैं। आमदनी बहुत कम है। फिर भी राज-कर्मचारियों के कोप में पड़कर मेरी यह दशा हो गई है। राज-कर्मचारी एक सज्जन पुरुष पर मिथ्या अभियोग लगाकर मुझे उसके विरुद्ध गवाही देने को विवश कर रहे थे, मैंने स्वीकार नहीं किया, इसका परिणाम यह हुआ कि मुझे एक दूसरे अभियोग में फँसाकर उन्होंने मेरा अन्न-वस्त्र और बरतन आदि सब बिकवाकर हमें नितान्त गरीब बना दिया। घर में खाने के लिए दाना नहीं है, प्रायः उपवास ही करके दिन व्यतीत कर देता हूँ। यह कहते-कहते गरीब की आँखें भर आईं। वह सिसक-सिसककर रोने लगा।

विजया भी रोने और सिर नीचा करके सोचने लगी—प्रियतम इन्हीं की सेवा के लिए अपने जीवन का उद्देश्य बतलाते थे, अब मैं उनका उद्देश्य पूरा करने के लिए सारे देश का भ्रमण करूँगी। संसार में सेवा-धर्म ही शान्ति देनेवाला काम है। प्रियतम को बन-बन में ढूँढ़ते फिरना केवल उन्मत्तों का प्रयास है। वास्तव में उनका वास तो दीनजनों के सुख में है।

उसी दिन से उसका काया-कल्प-सा होगया। वह संन्यासिनी होकर, हाथ में त्रिशूल लेकर गरीबों की सेवा करने निकली।

उसने क्षण भर में उसी तरह के असंख्य नर-कंकाल देखे जिनको चालाक लोग अपने माया-जाल में फँसाकर उनका रक्त चूसते रहते हैं।

वह गाँव-गाँव घूमने लगी। द्वार-द्वार पर जाकर जगाने लगी। उसके गीत सुनकर लोग चौंक उठे; सबको अपनी हीन दशा अखरने लगी। कृषकों में वह देवी की तरह पूजी जाने लगी।

उधर युवक गाँव-गाँव में घूमकर आन्दोलन कर रहा था। मुनि भी प्रयत्न-शील थे। वे भी देश—धर्म की रक्षा के लिए युवकों का आह्वान कर रहे थे।

प्रजा को अत्याचार के विरुद्ध सिर उठाते देखकर राज-कर्मचारी सजग हुए। उन्होंने घोषणा कर दी कि विजया और युवक को पकड़ लो और मुनि को मार डालो।

शत्रुओं ने इस घोषणा का गाँव-गाँव में कहकर प्रचार किया और गाँव वालों को वे सताने भी लगे।

प्रजा अत्याचार सहते-सहते थक चुकी थी। अपने हितैषियों पर आपत्ति आई हुई देखकर वह क्रोध को संभाल न सकी। वह सिंह के समान क्रोधावेश में घर-घर से निकल खड़ी हुई और शत्रुओं पर टूट पड़ी। भाई-भाई का वैर भूलकर एक साथ खड़े हुए। युवक उनको पूर्वजों की वीर-गाथाएं सुनाकर उत्साहित भी करता था और शत्रुओं से युद्ध भी करता था।

पर शत्रुओं की संख्या अधिक थी। इससे लड़ते-लड़ते थककर प्रजा के पैर उखड़ने वाले थे। इतने ही में मुनि हज़ारों वीरों को लेकर आ पहुँचे। तब तो प्रजा सिंह-नाद से गरज उठी। शत्रु कुछ पिछड़े; उसी समय भैरवी-भेस में विजया हज़ारों मंत्र-मुग्ध की तरह मानव कंकालों की सेना लेकर आ पहुँची। अब तो शत्रु ने विजय की आशा छोड़ दी और वह प्राण-रक्षा का उपाय करने लगा।

इस अवसर में युवक बहुत थक चुका था। उसके घावों से रक्त बह रहा था। यकायक बग़ल से एक शत्रु ने उस पर तलवार चला दी। वह

वार नहीं बचा सकता था और इतना निकट था कि तलवार उसका काम तमाम कर देती, अगर मुनि ने आगे बढ़कर शत्रु की तलवार का वार अपनी छाती पर न ले लिया होता। तत्काल ही युवक ने मुड़कर शत्रु का सिर उड़ा दिया; पर उसने देखा कि मुनि घायल होकर ज़मीन पर गिर गए हैं। वह बैठ गया और उसने मुनि के सिर को अपनी गोद में रख लिया।

उसी समय विजया ने ज़ोर का आक्रमण किया और शत्रुओं को रण-भूमि से खदेड़ दिया।

मुनि ने कहा आज बड़े हर्ष के साथ मैं शत्रुओं को भागता हुआ देख कर शरीर छोड़ रहा हूँ। हे पुत्र! तुमको धन्य है; तुमने अपने पिता के आदेश का पालन करके स्वदेश को शत्रुओं से रहित किया। एक बार शत्रु हार गए हैं, प्रजा विजयी हुई है, अब उनके पैर न जमेंगे। बेटा! तुम विजया के साथ संसार का सुख प्राप्त करो; वह तुमको अवश्य मिलेगी। जिस दिन तुम मिले थे, वह भी मिल चुकी थी। पर पता नहीं, कहाँ चली गई। तुम मुझे पहचान न सके; क्योंकि बहुत बचपन ही में तुम मुझसे अलग हुए थे; मैं ही तुम्हारा पिता हूँ।

उसी समय 'स्वदेश की जय' का नाद सुनाई पड़ा और मुनि ने आनन्द से शरीर-त्याग किया। युवक 'हाय पिता' कहकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया।

पाँचवाँ सर्ग

वही कुटी, वही सुनसान वन; प्रातःकाल का समय; पूर्व की ओर आकाश में सूर्य की लालिमा निकल रही थी। विजया मूर्च्छित युवक को अपनी जंघा पर रखे बैठी थी, और मधुर-स्वर से मङ्गल-गान गा रही थी। उसी समय युवक की मूर्च्छा जाती रही, उसने आँखें खोल दीं; उसने देखा कि चन्द्रमा (विजया का मुख) बहुत निकट है। उसके मन में यह इच्छा हुई कि चन्द्रमा को चूम लूँ। प्रेमी लोग अकृत्रिम-भाषा में एक दूसरे के मन का भाव कहते और समझ लेते हैं। तत्काल ही चन्द्रमा (विजया का मुख) उसके ओठों पर आ लगा।

मि ल न

पहला सर्ग

१

नीरव निशा तपोवन नीरव
शांत दिशा आकाश ।
नीरव तारागण करते थे
झिलमिल अल्प प्रकाश ।
प्रकृति मौन, सचराचर निद्रित,
अति निस्तब्ध समीर ।
जाग्रत था दीपक-प्रकाश में
केवल एक कुटीर ॥

२

दो जन, प्रणयी और प्रणयिनी
का वह शांति-निकेत ।
था निद्रा से रहित विपिन के
हृदय-समान सचेत ।
जग निद्रित, पर उन आँखों में
था न नींद का वास ।
क्या कारण था ? जो करते थे
वे एकान्त-निवास ॥

३

प्रणयी युगल कुटी के भीतर
अति समीप आसीन ।
थे चिन्तित, आसन्न-भयाकुल
निर्निमेष, गतिहीन ।
व्यथित प्रणयिनी धर प्रणयी के
बाहु-मूल पर माथ ।
साश्रु-नयन धीरे से बोली,
प्राण-सखा ! हे नाथ !

४

मुझे न छोड़ो विजन विपन में
हे प्रियतम ! हृदयेश
मैं अबला न सहन कर सकती
विरह-व्यथा लवलेश
सरला सुधबुध-हीन बालिका
शोकानुभव-विहीन ।
करो नहीं मुझ कपोतिनी को
अधिक-वियोगाधीन ॥

५

शक्ति नहीं, जो नाथ ! तुम्हारा
सुन भी सकूँ प्रयाण ।
रहते प्राण न जाने दूँगी
मेरे जीवनप्राण !

सुन प्रणयी के इन्दु-वदन में
मृदुल कौमुदी-हास ।
विकसित हुआ; झुकाया उसने
शशि को शशि के पास ॥

६

चन्द्र-कुण्डली-सा वलयित कर
रमणी-कण्ठ ललाम ।
चिबुक प्रस्फुटोन्मुख-गुलाब धर
चूम भाल अभिराम ।
कहा—प्रियतमे ! प्राणेश्वरि !
हे सतत संगिनी बाल !
सभय न हो, मैं नहीं करूँगा,
आने में अतिकाल ॥

७

जिनके कारण नष्ट हुआ है
अपना विभव-विलास ।
गृह तज ग्रहण किया है हमने
वन-एकान्त-निवास ।
जिनके कारण नित करता है
अगणित घर उपवास ॥
इस पर भी सहना पड़ता है
जिनका कटु उपहास ।

८

किया जिन्होंने स्वर्ण-भूमि को
कौड़ी का मुहताज ।

किया पद-दलित हाय हमारा
देव समर्पित ताज ।
कण-कण में जिनकी कुनीति की
कथा हो चुकी व्याप्त ।
हाय ! अभीतक हुआ न जिनका
अत्याचार समाप्त ॥

९

अणु-अणु में हैं व्याप्त इस समय
उनके विमुख विचार ।
उन्हें देख खग भी उठते हैं
उनका अन्त पुकार ।
प्रतिफल देना उन्हें उचित है
धर विकराल कृपाण ।
निश्चय है, उनका अब होगा
बहुत शीघ्र अवसान ॥

१०

क्षुब्ध शीघ्र होनेवाला है
दुर्गम महा समुद्र ।
कबतक उसमें उच्च रहेगा
अभिमानी तृण क्षुद्र !
वे भी समझ गये अपने को
घृणित और अनुदार ।
उनके इसी भाव से होगी
निश्चय उनकी हार ॥

११

रक्षित रखने को भूतल पर
मनुष्यता का नाम ।
उठनेवाले हैं ईश्वर के
कर असंख्य अविराम ।
अस्थि-चर्म-मय कङ्कालों में
जो कुछ बल है शेष ।
संचय कर रिपु-रहित करूँगा
अपना प्यारा देश ।

१२

रण मेरी बजने वाली है
करने को रिपु-नाश ।
शीघ्र देश में देखेगी तू
विजया ! विजय-प्रकाश ।
प्रिये! विदा, प्रियतमे ! विदा दो
सुमुखि ! सहर्ष, सहास ।
मैं पतङ्ग हूँ प्रेम-डोर का
फिर आऊँगा पास ॥

१३

पंकज-माला-सी प्रणयी के
मृदु-गलबहियाँ डाल ।
दृग-चकोर-से देख चन्द्र-मुख
बोली विह्वल बाल—
"प्यारे प्रतिमा मन-मन्दिर की
मेरे जीवन-प्राण !

क्या आवश्यक है लेना ही
कर में विषम कृपाण ?

१४

प्रेम-भरी चितवन प्राणी को
है पीयूष-समान ।
और घृणा की एक दृष्टि ही
है विकराल कृपाण ।
रिपुओं को सब मिलकर देखो
घोर घृणा के साथ ।
अनायास उनका क्षय होगा,
मेरे जीवननाथ !"

१५

सुनकर हँसा युवक, फिर बोला—
प्रिये ! ठीक है बात ।
पर इस रमणी-सुलभ अस्त्र से
उचित न शत्रु-निपात ।
कुटिल कटाक्ष-पात से करना
आहत हत उन्मत्त ।
है वह प्रमदा-कर्म, पुरुष के
लिए न कीर्त्ति-प्रदत्त !

१६

वीर-कर्म है खड्ग-हस्त हो
जा डटना रण-बीच ।
उसे न भीरु बना सकती है
सखा सहोदर मीच ।

प्रकृत-लज्जिता कुछ सकुचाकर
बोली अच्छा नाथ,
नहीं रुकोगे, तो रख लो इस
दासी को भी साथ ॥

१७

चिर सङ्गिनी तुम्हारी मैं हूँ
मेरे जीवननाथ !
जहाँ-जहाँ जाओगे मैं भी
सदा रहूँगी साथ ।
साथ रहूँगी, पद सेऊँगी
छाया-सम सब काल ।
मेरे नाथ ! न छोड़ूँगी मैं
यह तव बाहु विशाल ॥

१८

जो न ले चलोगे सँग प्यारे
तो करके विष-पान ।
होते ही दृग-ओट प्राणधन !
मैं तज दूँगी प्राण ।
बोला युवक—नहीं सुनती जो
प्राणप्रिये उपदेश ।
चलो; परन्तु बनालो अपना
पुरुष - सरीखा वेष ॥

१९

लज्जा भय तज, साहस उर धर
पुरुषों के अनुकूल ।

तुम रमणी सुकुमारमना हो
यह अब जाओ भूल ।
पर पद-दलित स्वदेश-भूमि का
चलो करें उद्धार ।
हम मनुष्य होकर क्यों छोड़ें
निज पैतृक अधिकार ।

२०

सुन वाणी हो सफल-मनोरथ
उमड़ा अमित उमङ्ग ।
पुष्प-भार-अवनता लता-सी
तज प्रियतम-तरु-अंग ।
उत्सुकता से उठी प्रणयिनी
सुन पति का आदेश ।
पुरुष-समान किया कर्तन कर
एड़ी-चुम्बित केश ॥

११

पगड़ी बाँध वस्त्र सब पहिना
तजकर सुन्दर चीर ।
शोभित हुआ वीर नारी का
युवक समान शरीर ।
देख मुकुर में रूप न निज को
स्वयं सकी पहचान ।
गिरा-गौरता-सदृश-सुमुख पर
आई मृदु मुस्कान ॥

२२

सस्मित वदन मत्त गज-गति से
आई पति के पास ।
वेश विलोक युवक के मुख में
विकसित हुआ सुहास ।
उसने कहा—प्रिये ! मोहित हूँ
नूतन देख विकास ।
पर छिप सकता नहीं विमोहक
तेरा नयन-विलास ॥

२३

तड़ित-नयन ये तेरे प्यारी !
हैं सब भेद-निधान ।
बतला देंगे ये चतुरों को
झट तेरी पहचान ।
अब विलम्ब क्या ? चलो प्रियतमे !
जगती-मध्य सुदूर ।
बन का दृश्य ध्यान में धर लो
प्राणप्रिये । भरपूर ॥

२४

यह प्रिय कुटी छोड़नी होगी
अति सुखदायक गोद ।
यह तरु-लता और पशु-पक्षी
वन के विविध विनोद ।
फिर कब यहाँ लौटना होगा ?
कह सकता है कौन ?

यह कह सजल-नयन हो प्रणयी
मुग्ध हुआ घर मौन ॥

२५

विजया बोली—प्राणाधिक प्रिय ?
यह द्रुम-लता-वितान ।
तजना होगा, यह विचारकर
बहुत विकल हैं प्राण ।
शांत सुखद क्या नाथ ! यहाँ से
बढ़कर है संसार ?
वन्य सखाओं से बढ़कर क्या
है जग-जन का प्यार ?

२६

देखा भी तो नहीं कि कैसा
सुन्दर है संसार !
अबतक था संसार मुझे तो
यही लता-आगार ।
सुनती हूँ संसार विषम है
द्वेष कपट की खान ।
वहाँ के लिए क्यों आतुर हो
मेरे प्रियतम प्राण ।

२७

नाथ तुम्हारी आज्ञा ही से
करती हूँ प्रस्थान ।
पर इस लता-भवन के आगे
है जग नरक समान ।

बोला प्रणयी--प्राण-वल्लभे !
ऐसी बात न बोल ।
जग ही में जाना जाता है
मनुष्यता का मोल ॥

२८

ईश्वर-भक्ति, लोक-सेवा है
एक अर्थ दो नाम ।
वन में बस कैसे हो सकता
है मनुजोचित काम ?
पृथिवी पर सुख-शांति बढ़ाना
देकर निज श्रम-शक्ति ।
मनुष्यता का अर्थ यही है
और यही हरि-भक्ति ॥

२९

बाल-सखा इन वन-जीवों का
प्रिये ! तजो अब मोह !
सहना ही होगा अब हमको
इनका विषम विछोह ।
चिरपरिचित वृक्षों से मिलकर
देख विहङ्ग कुरङ्ग ।
तब आनन्दकुमार चल पड़ा
ले विजया को सङ्ग ॥

३०

धीरे धीरे धीरे दोनों
चले विपिन-पथ-बीच ।

मानो उनका हृदय रहा था
कानन पीछे खींच ।
पीछे देख आह भरते थे
दोनों बारम्बार ।
दीर्घ श्वास तज किया उन्होंने
चिरपरिचित वन पार ॥

३१

बीती निशा, उषा उठ आई
पहन सुनहला चीर ।
प्रणयी युगल विमोहित पहुँचे
तरंगिणी के तीर ।
तट-तरुवर से बँधी तरी का
बंधन सत्वर खोल ।
दोनों चढ़कर लगे चलाने
प्रमुदित मन जय बोल ॥

३२

इस विध तरी युगल प्रणयी की
जा पहुँची मँझधार ।
जहाँ गँभीर अथाह श्याम तल
थी जल-राशि अपार ।
उसी समय हो गई प्रकृति अति
क्षुब्ध नितान्त अशान्त ।
दिशा भयानक हुई, काँप उठा
व्योम-वारि-वन-प्रांत ॥

३३

क्षण में उमड़-घुमड़ गर्जन कर
घिर आये घनघोर ।
बहा विषम विक्षिप्त प्रभंजन
वृक्षों को झकझोर ।
होने लगी वृष्टि रिमझिमकर
अविरत मूसलधार ।
आंदोलित लहरें तरणी पर
करने लगीं प्रहार ॥

३४

तरी लगी उलटने-पलटने
ग्रसित, विवश, निरुपाय ।
'अब डूबे' 'तब डूबे' तरणी
अनाधार असहाय ।
खड़े अर्ध-जल-मग्न तरी में
दोनों प्रणयी धीर ।
करना है जल-गर्भ-वास अब
पहुँच न सकते तीर ॥

३५

देख प्रकृति का कोप भयानक
बोला प्रणयी वीर—
प्रिये ! हमें अब तजना होगा
यह क्षण-भंगु शरीर ।
देह त्यागने का है मुझको
प्रिये ! न तिल-भर खेद ।

जागृति और स्वप्न-सा मरने
जीने में है भेद ॥

३६

खेद यही है हुआ न पूरा
अपना मनोभिलाष ।
इस तन से स्वदेश-सेवा की
रही न अब तो आस ।
आओ, एक बार प्राणेश्वरि !
लें हम भुजभर भेंट ।
शय्या करें अतल जल में फिर
आशा सकल समेट ॥

३७

"मैं संगिनी सदा हूँ प्यारे !"
बोली हँसकर बाल ।
कण्ठ-समर्पित हुए उभय के
बाहुमाल तत्काल ।
मुख चुम्बनकर, देख एकटक
फिर दृग-पट कर बन्द ।
धारणकर प्रिय-मूर्ति हृदय में
पाकर परमानन्द ॥

३८

वे स्वर्गीय शांति से भूषित
प्रेमी शोक-विहीन ।
जीवनमयी तरी के सँग में
जल में हुए विलीन ।

प्रकृति थिर हुई, पवन थम गया,
सब हट गये पयोद ।
जाग्रत हुआ चराचर में फिर
सुख आमोद-प्रमोद ॥

३६

अंशुराशि के शुभागमन की
बेला समझ समीप ।
नभ में बुझा चुके थे सुर भी
निज-निज घर के दीप ।
कलरव,सुमन-विकास संग ले
निकली रवि की कोर ।
क्षणभर पहले ही दो प्रेमी
कहाँ गए ? किस ओर ?

४०

फिर पहले-सा सुगम सम हुआ
तरंगिणी का पाथ ।
तरी कहाँ है ? सद्य प्रस्फुटित
कुसुम-कली के साथ ।
कुसुम-कुमुदिनी मुँदे देखकर
प्रखर दिनेश-प्रकाश ।
नहीं निकलने भी पाया था
विश्व-विमोहक वास ॥

———

दूसरा सर्ग

१

गगन-नीलिमा में हीरे का
तेज पुञ्ज अभिराम ।
एक पुष्प आलोकित करता
था जल-थल-नभ-धाम ।
बरछी-सी उसकी किरनों से
खाकर गहरी चोट ।
अन्धकार हो क्षीण छिपा था
तरु-पत्तों की ओट ॥

२

पूर्व क्षितिज से कुछ ऊपर उठ
वह अति विमल प्रकाश ।
करता था सब सचराचर की
निन्द्रा-तन्द्रा नाश ।
तरल तरंगित सरित-सलिल में
उसकी प्रभा ललाम ।
लहक रही थी ज्यों, झड़ते हों
स्वर्ण-सुमन अभिराम ॥

३

दिव्य-मूर्ति मुनि एक तपोधन
शांत-वृत्ति मतिधीर ।
भरते थे जलपात्र नीर से
उस तटिनी के तीर ।

बहता देख एक शव जल में
उन्हें हुआ संदेह ।
कौतूहलवश महामहिम ने
धर ली बढ़कर देह ॥

४

बाहर लाकर पुरुष-वेश में
देखा नारी-रत्न ।
कान्ति देख मुख पर जीवन की
मुनिवर हुए सयत्न ।
झट निकटस्थ कुटी में शव को
लाकर कर उपचार ।
मुदित हुए चैतन्य बनाकर
मुनि सद्गुण-आगार ॥

५

उठ बैठी वह चकित-मृगी-सी
पुरुष-वेशिनी बाम ।
देख सामने मुनि को उसने
सादर किया प्रणाम ।
इधर-उधर वह लगी देखने
ठौर अपरिचित जान ।
रहा न अपने पुरुष-वेष का
उसे उस समय ध्यान ॥

६

फिर उसने अति व्याकुलता
से खोले अधर-प्रवाल ।

कहा—कहाँ हूँ कहो कृपाकर
हे मुनि ! मैं इस काल ?
कहाँ गया प्राणेश्वर मेरा ?
शीघ्र कहो मुनिनाथ !
हम दोनों जल-मग्न हुए थे
प्रभो ! एक ही साथ ॥

७

प्रियतम बिना न जी सकती हूँ
बच न सकेंगे प्राण ।
अश्रु गिराकर व्याकुलता का
दृग ने दिया प्रमाण ।
नारी उसको जान चुके थे
पहले ही मुनिवर्य ।
इससे हुआ न उनको उसकी
बातें सुन आश्चर्य ॥

८

वे बोले अति स्नेह-भाव से–
पुत्री ! हो न हताश ।
जाता हूँ मैं शीघ्र खोजने
तेरे पति की लाश ।
पर जबतक मैं लौट न आऊँ
जाना कहीं न और ।
यहाँ रहो सुख से हे बेटी !
है यह निर्भय ठौर ॥

९

यों कह चले तीर की द्रुत-पद
पर-हित-साधन-व्यग्र ।
प्रथम किया अन्वेषण मुनि ने
तट निकटस्थ समग्र ।
देख न पड़ी कहीं जब बहती
जल में कोई लाश ।
तब मुनि चले प्रवाह-दिशा में
करते हुए तलाश ॥

१०

उस एकांत कुटी में क्षण भी
रख न सकी मन शांत ।
विजया हुई विरह से व्याकुल
श्रान्त, क्लान्त, उद्भ्रांत ।
बाहर आकर लगी देखने
कानन का शृङ्गार ।
पर प्रिय-दर्शन-तृषित-दृगों में
था न प्रकृति-प्रति-प्यार ॥

१२

प्रेम विचित्र वस्तु है जग में
अद्भुत शक्ति-निधान ।
निद्रा में जागृति, जागृति में
है वह नींद समान ।
प्रेम नशा जब छा जाता है
आँखों में भरपूर ।

सोना जगना दोनों उनसे
हो जाते हैं दूर ॥

१२

गन्ध-विहीन फूल है जैसे
चन्द्र चन्द्रिका-हीन ।
यों ही फीका है मनुष्य का
जीवन प्रेम-विहीन ।
प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है
प्रेम अशंक अशोक ।
ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम में
प्रेम हृदय-आलोक ॥

१३

जग की सब पीड़ाओं से है ।
होता हृदय अधीर ।
पर मीठी लगती है उर में
सत्य प्रेम की पीर ।
व्याकुल हुआ प्रेम-पीड़ा से
जिसका कभी न प्राण ।
भाग्य-हीन उस निष्ठुर का है
उर सचमुच पाषाण ॥

१४

जिस पर दया-दृष्टि करते हैं
मंगलमय भगवान ।
पूर्ण प्रेम-पीड़ा से पीड़ित
होता है वह प्राण ।

जिसने अनुभव किया प्रेम की
पीड़ा का आनन्द ।
उससे बढ़ है कौन जगत में
सुखी और स्वच्छन्द ॥

१५

प्रेमोन्मत्त हृदय में रहता
है न विरोध न क्रोध ।
दुर्गुण नहीं प्रेम-पथ का कर
सकता है अवरोध ।
मधुर प्रेम-वेदना-मुग्ध जन
सुख-निन्द्रामय मस्त ।
हैं देखते प्रेम-छवि दृग भर
फिरकर जगत समस्त ॥

१६

फूल पंखुड़ी में, पल्लव में
प्रियतम-रूप विलोक ।
भर जाता है महा मोद से
प्रेमी का उर-ओक ।
कली देख करने लगता है
वह उन्मत्त प्रलाप ।
देखें कबतक इन पत्तों में
लुके रहेंगे आप ॥

१७

प्रेम-भरे अधखुले दृगों से
शशि को देख सहास ।

प्रेमी समझ मुग्ध होता है
प्रियतम-हास-विकास ।
उसे प्रेममय लगता है सब
सचराचर संसार ।
प्रेम मग्न करता है वह नित
प्रेमोद्यान – विहार ॥

१८

प्रेम वेदना-व्यथित हृदय से
मथित प्रेम की आह ।
कढ़कर भूतल में भरती है
नवजीवन उत्साह ।
करुणा-भरे प्रेम के आँसू
ढलकर सुधा-समान ।
सींच दया की जड़ देते हैं
जग को आश्रय-दान ॥

१९

जन-जन में प्रेमी को दिखती
है प्रियतम की कान्ति ।
इससे उसे लोक-सेवा में
मिलती है अति शान्ति ।
पीड़ित की पीड़ा, भूखे की
क्षुधा तृषित की प्यास ।
उदासीनता निराश्रयों की
आशा-रहित उदास ॥

२०

कुशित जाति के उन्नति-पथ के
कंटक चुन कर दूर ।
प्रेमी परम तृप्त होता है
आह्लादित भरपूर ।
दया नहीं, कर्त्तव्य नहीं, वह
नहीं किसी का दास ।
है चाहता देखना वह तो
प्रियतम-रूप विकास ॥

२१

रूप कहाँ है ? आर्त्त-मुखों पर
प्रकृत हर्ष का हास ।
होता है जब उदित, वही है
प्रियतम-रूप-विकास ।
प्रेम-विह्वला विरह-विताड़ित
विजया परम अधीर ।
छोड़ कुटीर चली खिंचती-सी
तरंगिणी के तीर ॥

२२

तीर पहुँचकर देखी उसने
सलिल-राशि गम्भीर ।
सतत प्रवाहित पूर्व दिशा में
समय-समान अधीर ।

ठीक दोपहर, व्योम-मध्य रवि
प्रखर समुज्ज्वल धूप ।
सरित-मुकुर में देख रहे थे
दिन-नायक निज रूप ।

२३

रूप-गर्विता तरङ्गिणी का
था सब सुन्दर अङ्ग ।
छवि छलकी पड़ती थी मानो
तट पर चढ़ी तरंग ।
पतिप्राणा-सम नदी मित्र की
प्रतिछवि उर में धार ।
गमनशील थी कलकलस्विनी
करती हुई विहार ॥

२४

देख सरित-शोभा विजया के
लगी घाव में ठेस ।
बोली—ठगिनी-सा है तेरा
सरिते ! मोहक भेस ।
तूने मेरे जीवन-धन को
लिया अचानक छीन ।
देख न सकी हाय ! सुख मेरा
रे विषमना मलीन ॥

२५

शोक मान मेरी विपत्ति में
सबने तजा विलास ।

खग ने गान,लता ने हिलना
मृग ने गमन-प्रयास।
मुझे अभागिन विधवा कर तू
हुई न तनक उदास।
अटिलाती नाचती चली तू
कल-कल कर उपवास॥

२६

प्राणनाथ-रवि बिना पड़ा है
सूना हृदय-अनन्त।
मृदुल लता कर ग्रीष्म-हस्तगत
बिछुड़े कहाँ बसन्त।
हा! स्वदेश-सेवा-व्रत-तत्पर
सद्गुण के आगार।
बिना तुम्हारे कौन करेगा,
प्रियतम! देशोद्धार॥

२७

तुमसे थी उर में भविष्य के,
शुभ आशा उत्पन्न।
उसे न करो हृदय-धन मेरे,
वञ्चित और विपन्न।
स्नेह-मूर्ति पर-हित-रत सत्तम
करुणा के अवतार।
हाय! कहाँ हैं भँवर-ग्रसित
नैया के मुनि-पतवार॥

हाय! पूर्व-कृत पापों का क्या
हुआ समाप्त न भोग ।
जो मैं जाग उठी सहने को
विषवत् विषम वियोग ।
विजया, प्रेम-विनिद्रित विजया
विसुध चेतना-हीन ।
प्रियतम्! प्राणेश्वर! पुकारती
कुररी-सी अति दीन ॥

२६

चली नदी-तट-पथ से चलते-
चलते पश्चिम ओर ।
ठौर मिला, जीवन-संध्या का
जहाँ हुआ था भोर ।
कृशता, तरणि-ताप, पथ श्रम
फिर विरहानल विकराल ।
सृधि प्रभात की घृत-आहुति-सी
बाल न सकी सँभाल ॥

३०

प्रेमोन्मादमयी विरहिन से
सहा न गया कलेश ।
कूदी नदी-अङ्क में कहकर
हा! प्रियतम! प्राणेश!
जब विच्छिन्न तप्त सिर ऊपर
पड़ा सुशीतल नीर ।

जागी शक्ति चेतना की फिर
श्रमगत हुआ शरीर ॥

३१

हेमाङ्गिनी नीर से निकली
विगत सकल सन्ताप ।
बोली—हाय ! हो रहा था यह
मुझसे भीषण पाप ।
किया दृगों ने प्राणेश्वर की
रूप सुधा का पान ।
श्रवणों ने है सुना मनोहर
उनका मंगल गान ॥

३२

सुखी हुए थे भुज-वेष्टन कर
प्रियतम-कंठ-प्रदेश ।
कई बार उनके हाथों से
सुलझे थे यह केश ।
मुझे उचित है नहीं छोड़ना
इन अंगों का साथ ।
इनसे बहुत प्यार करते थे
मेरे जीवन-नाथ ॥

३३

अब कर्त्तव्य यही है पूरा
करूँ वही उद्देश ।
जिसकी पूर्ति-हेतु उद्यत थे
मेरे प्रिय प्राणेश ।

पति-अभिलाष पूर्ण करना ही
है मेरा ध्रुव-धर्म ।
सदा करूँगी मैं स्वदेश की
सेवा का शुभ-कर्म ॥

३४

जिस प्रकार से अब स्वदेश का
होगा पुनरुत्थान ।
वही करूँगी यत्न अहर्निश
देकर तन-मन प्राण ।
इस प्रकार विजया दृढ़ता से
करती थी मन शान्त ।
उसी समय में एक शब्द से
ध्वनित हुआ वन-प्रान्त ॥

३५

जैसे किसी मनुष्य के लिए,
कोई उठा पुकार ।
मुनि का शब्द समझकर विजया
दौड़ी वृत्ति-बिसार ।
काँटों में उलझती-सुलझती
गिरती-पड़ती बाल ।
फिर जल उठी हृदय में उसके
विरह-वह्नि विकराल ।

३६

हा प्रियतम ! प्राणेश ! प्राणधन !
करती हुई पुकार ।

बहुत दूर घुस गई विपिन में
मिला न वार न पार ।
कहाँ जाय ? क्या करे ? न पथ है
न है दिशा का ज्ञान ।
विरह-विदग्ध हृदय में उसके
उमड़ा शोक महान ॥

३७

चारों ओर खड़े थे केवल
अगणित वृक्ष विशाल ।
कभी-कभी गर्जन कर उठते
थे वन-जन्तु कराल ।
प्रेम-विवश सहती सब संकट
अति व्याकुल, बेहाल ।
एक वृक्ष के तले बैठकर
रोई अबला बाल ॥

तीसरा सर्ग

१

कुछ पथ तैकर पूर्ण होगया
मुनि का मनोभिलाष ।
देख पड़ी बहती धारा में
एक युवक की लाश ।
होती देख सफलता श्रम में
मुनिवर हुए प्रसन्न ।

जल में घुस शव ले बाहर हो
हुए यत्न-सम्पन्न ॥

२

युक्ति-विलक्षण कला-निपुण मुनि
करके द्रुत उपचार ।
हुए मुदित अवलोक देह में
कुछ समीर-संचार ।
युवक सजीव हुआ पर उसकी
मूर्च्छा हुई न भंग ।
चलती थी बस साँस नहीं था
हिलता कोई अंग ॥

३

उसे कुटी में ले आये मुनि
पर - हित - साधन - वीर ॥
विस्मित हुए बिना विजया के
सूनी देख कुटीर ।
कुश-किसलय की विमल साथरी
धूनी के नजदीक ।
शीघ्र बिछा मुनि ने पौढ़ाया
उसपर युवक प्रतीक ॥

४

फिर "पुत्री!" कह लगे खोजने
आसपास वन-पाथ ।
बहुत बुलाया;पर वह तो थी
फँसी प्रेम के हाथ ।

कुछ धीरज ही से हो जाती
पूरी मन की बात।
पर वह बात नहीं होने दी
उसे प्रेम ने ज्ञात॥

५

भ्रम में फँस हँसता रोता है
करता मेल-अमेल।
प्रेम-विवश करता मनुष्य है
नये-नये नित खेल।
वर्तमान भावी दोनों के
बीच निमिष का एक।
परदा डाल प्रेम करता है
अर्थ-अनर्थ अनेक॥

६

बहुत खोजने पर जब विजया
मिली न तब तज आस।
कुछ चिन्तित होकर आ बैठे
मुनि धूनी के पास।
धूनी की गर्मी से भागी
शीत छोड़ आधार।
नस-नस में हो चला युवक के
शोणित का संचार॥

७

सिकुड़न-रहित ललाट ललित अति
उन्नत कला-निधान।

पौरुष-पूर्ण विशद वक्षस्थल
वृषभ-कन्ध बलवान ।
परिघ-समान प्रलम्ब युगल भुज
पृथुल कठिन भुजदण्ड ।
अंग-अंग मे छलक रही थी
शोभा, शक्ति प्रचण्ड ॥

८

मनोभाव-भूषित मुख-मण्डल
सुन्दर अति गम्भीर ।
मुग्ध हुए मुनि देख युवक का
गठित बलिष्ठ शरीर ।
देख सतृष्ण दृष्टि से उसको
मुनिवर बारम्बार ।
करने लगे आह भर शीतल
मन में विविध विचार ॥

९

जैसी है इसके शरीर की
गठन स्वरूप-निधान ।
उससे तो निश्चय यह होगा
कोई पुरुष महान ।
अर्द्धचन्द्र-सम भाल सुचिक्कण
मुख का भार गँभीर ।
बतलाता है, यह अवश्य है
ब्रह्मचर्य - व्रत - वीर ।

१०

इसका है शरीर ही इसके
संयम का सुप्रमाण ।

तो क्या होगा नहीं हृदय में
देश भक्तिमय प्राण !
सुन्दर रूप रुचिर आकृतिमय
शोभित मंजु विकास !
सुमन सुगन्ध-रहित है, कैसे
करें शीघ्र विश्वास !

११

यदि स्वदेश-सेवा-व्रत धारण
कर ले यह नररत्न ।
तो अपने अभीष्ट-साधन का
समझूँ सफल प्रयत्न ।
मुनि यों विरच रहे थे मन में
प्रिय कल्पना-कलाप ।
उसी समय वह युवक स्वप्न-वश
करने लगा प्रलाप ॥

१२

विजया ! प्रेम-रूपिणी विजया !
प्राण - वल्लभे ! वाम !
तूने यह पूछा है मुझसे
प्रश्न बड़ा अभिराम ।
'मुझपर और देश दोनों पर
रखते हो अनुराग ।
किसके लिए किसे तुम प्रियतम !
कर सकते हो त्याग ?'

यदि तू रहे देश-सेवा में
मेरे सँग सब ठौर ।
तो तुझसे बढ़कर इस जग में
प्रिय है मुझे न और ।
चुप हो रहा युवक यह कहकर
देश-प्रेममय बात ।
सुनि मुनि हुए प्रफुल्लित पाकर
चिर-अभिलषित प्रभात ॥

१४

गद्‌गद् कण्ठ हुआ उर-भीतर
उमड़ा हर्ष अपार ।
प्यार-भरे नयनों से मुनि के
बही प्रेम की धार ।
दोनों हाथ जोड़कर मुनि ने
हरि को किया प्रणाम ।
मिला दया से जिसकी ऐसा
देश-भक्त गुण-धाम ॥

१५

धीरे-धीरे कुछ घंटों में
हुई शिथिलता-दूर ।
युवक प्रसन्न-वदन उठ बैठा
शान्त स्वस्थ भरपूर ।
घटना स्मृति-पट पर प्रभात की
छाया-सी अति क्षीण ।

थी अंकित, पर ध्यान न आया
मन था अति स्वाधीन ॥

१६

मुनि को देख प्रणाम किया फिर
ठौर अपरिचित देख ।
झलक पड़ी उसके मुख-मंडल
पर विस्मय की रेख ।
उसने कहा—कहाँ हूँ मैं अब ?
है यह किसका धाम ?
किसने करके दया दिया है
मुझे यहाँ विश्राम ?

१७

मुनि ने कहा—तुम्हारा हे सुत !
मृतक समान शरीर ।
पाया था मैंने प्रवाह में
तरंगिणी के तीर ।
परमेश्वर की अतुल दया से
तुम फिर हुए सजीव ।
देख तुम्हें चैतन्य हुआ है
मुझको हर्ष अतीव ॥

१८

अब सुधि में आई प्रभात की
घटना भरी विषाद ।
आहत हुआ युवक मन ही मन
विजया की कर याद ।

पूछा उसने-हे मुनि ! कोई
लाश मिली क्या और ?
मुनि ने कहा-तुम्हीं थे केवल
मुझे मिले उस ठौर ॥

१६

मुनि ने नहीं कहा विजया के
मिलने का वृत्तान्त ।
सोचा-चित्त कदाचित् सुनकर
होगा अधिक अशांत ।
बोले फिर-हे सुत तुम अपना
परिचय करो प्रदान ।
किस कारण से तुमने जल में
किया समर्पित प्रान ?

२०

बोला युवक उसाँस खींचकर
मुनि तप-तेज-निधान !
कथा बड़ी विस्तृत है मेरी
घटनाओं की खान ।
पर मुनिवर मैं नहीं आपकी
आज्ञा सकता टाल ।
थोड़े में संक्षिप्त रूप से
कहता हूँ सब हाल ॥

२१

मेरे परम दयालु पिता
पर-दुख-कातर मतिमान ।

मिलन नगर के अधिवासी थे
धन - गुण - गौरवगान ।
अल्प-वयस्क मुझे प्रिय जननी
गई जगत में छोड़ ।
क्रीड़ा-स्थल मेरा उस दिन से
रहा पिता का क्रोड़ ॥

२२

अब की भाँति मचा था तब भी
दुखमय हाहाकार ।
निठुर विदेशी नित करते थे
अगणित अत्याचार ।
सुनकर दुसह दीन-दुखियों की
हृदय विदारक हाय ।
करने चले पिता रक्षा का
उनकी उचित उपाय ॥

२३

राज-कर्मचारीगण इससे
उन पर हुए सकोप ।
न्यायालय में किया बुलाकर
मिथ्या दोषारोप ।
दिये गये कितने प्रमाण पर
सिद्ध न हुआ उपाय ।
कर्मचारियों ने करवाया
मनमाना अन्याय ॥

२४

कर्मचारियों से ले करके
न्यायी ने उत्कोच।
किया घोर अन्याय, न्याय के
नाम बिना संकोच।
अर्थ-दण्ड से दिया पिता को
अच्छी तरह दबोच।
उपजा प्रबल पिता के उर में
शान्ति-विमोचन सोच॥

२५

उच्च न्यायियों के समीप तक
करते हुए पुकार।
पहुँचे पिता, परन्तु वहां भी
हुआ विनय बेकार।
वे हाकिम अन्याय-समर्थक
पाये गए तमाम।
अत्याचारी को भाता है
कहां न्याय का नाम॥

२६

तब से पिता मग्न रहते थे
चिन्ता में दिन-रात।
राज-कर्मचारी फिर करने
लगे नये उत्पात।
मेरे पुर के पास विपिन में
एक साधु विद्वान्।

रहते थे, उनका करते थे
पिता बहुत सम्मान ॥

२७

एक दिवस क्या हुआ, पितृवर
करके सुदृढ़ विचार।
मुझे गोद ले चले विपिन को
छोड़ सकल घरबार।
पहुंच कुटी में कहा साधु से
विनय-सहित कर जोड़।
मैंने दिया आज से अपना
धाम, धरा, धन छोड़ ॥

२८

अब असह्य हो गया प्रजा पर
प्रतिदिन का अविचार।
सुना नहीं जाता है मुझसे
उनका हाहाकार।
बढ़ता ही जाता है उनमें
दुर्गुण बैर - विरोध।
जान-बूझकर किया जा रहा
है गुण का अवरोध ॥

२९

बैर - विरोध प्रजा के हित के
है सदैव प्रतिकूल।
पर है वही कुनीति तन्त्र का
अति परिपोषक मूल।

है न प्रजा के जिसकी भाषा
भेस स्वभाव समान।
वह उनके हित पर कब देगा
किस मतलब से ध्यान?

३०

प्रजा रुष्ट है इस कुतंत्र से
निश्चय होगी क्रान्ति।
अत्याचार हटाकर तब मैं
ग्रहण करूंगा शान्ति।
गुरु-सम मान्य आप हैं मेरे
भ्राता मित्र-समान।
यह प्रिय पुत्र आज से मैंने
दिया देश को दान॥

३१

देकर देश-भक्ति की शिक्षा
करके सुदृढ़ विचार।
करियेगा स्वदेश-सेवा के
लिये इसे तैयार।
हो यह बड़ा, इसे कहियेगा
मेरा यह संदेश।
स्वतंत्रता ही है बस तेरे
जीवन का उद्देश॥

३२

यह कह पिता गए घर तजकर
कहाँ? मुझे अज्ञात।

रहने लगा उसी दिन से मैं
कुटिया में दिन-रात।
मुझसे कुछ छोटी कन्या थी
साधु देव के एक।
हम दोनों को लगे पढ़ाने
वे सहर्ष सविवेक॥

३३

हम दोनों थे साथ खेलते
पढ़ते करते गान।
दो तन थे, पर हम दोनों के
हुए एक मन, प्राण।
कुछ दिन बाद साधु का आया
अन्तिम काल समीप।
हमने समझा, आज बुझेगा
इस कुटिया का दीप॥

३४

बुला साधु ने मुझे सुनाया
पिता-कथित सन्देश।
फिर हम दोनों को देकर अति
मङ्गल-प्रद उपदेश।
मुझसे पाणि-ग्रहण कराया
कन्या का सानन्द।
स्वर्ग सहर्ष सिधारे सत्तम
सुखी साधु स्वच्छन्द॥

३५

मुनि की आज्ञा से यद्यपि था
पकड़ा उसका हाथ।
पर गृहस्थवत् भाव नहीं था
मेरा उसके साथ।
उस साध्वी शिक्षिता सती का
था विजया शुभ नाम।
शोक, आज सरिता में उसने
पाया चिर-विश्राम॥

३६

प्रेममयी विजया से मुझको
मिलता था आह्लाद।
पर सन्देश पिता का हरदम
रखता हूँ मैं याद।
जब तक देश स्वतन्त्र न होगा
मिटकर अत्याचार।
तबतक मैं संयमी रहूंगा
ब्रह्मचर्य-व्रत धार॥

३७

निज जीवन में पूर्ण करूँगा
अपना मनोभिलाष।
खेद यही है, विजया की भी
पूरी हुई न आश।
युवक चुप हुआ, उसके मुख पर
छा आया कुछ शोक।

सुनकर मुनि अति मुग्ध हर्ष के
आँसू सके न रोक ॥

३८

कुछ क्षण के उपरान्त युवक फिर
बोला—हे मुनिराज।
कृपया मुझे बताओ कैसे
करें देश का काज ?
क्या-क्या विघ्न पड़ेंगे इसमें?
कैसे होंगे दूर ?
निज अनुभूत ज्ञान से हे मुनि!
मुझे करो भरपूर ॥

३९

बोले मुनि—हे पुत्र! देश की—
है गति अति प्रतिकूल।
धीरे-धीरे क्षय हो रहा
है स्वजाति का मूल।
जहाँ स्वर्ग-सुख भोग रहे थे
अति प्रसन्न सब लोग।
आज वहाँ पर गरज रहे हैं
नित दुकाल दुख रोग॥

४०

नरक यन्त्रणा से बढ़कर है
छाया संकट घोर!
मानव-दल में मची हुई है
त्राहि-त्राहि सब ओर।

अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है
उद्यम का न उपाय।
वन भी नहीं ठौर टिकने को
कहाँ जायँ? क्या खायँ?

४१

लाखों नहीं, करोड़ों को है
सुख से हुई न भेंट।
मिलता नहीं जन्मभर उनको
खाने को भर पेट।
दिखती नहीं किसी के मुँह पर
प्रसन्नता की रेख।
भ्रमते हुए पेट-चिन्ता में
पड़ते हैं सब देख॥

४२

चोरी, जारी, छल, प्रपंच, अघ,
आडम्बर, पाखंड।
बढ़ते जाते हैं जनता में
दुर्गुण परम प्रचंड।
सबका एक मूल कारण है
दरिद्रता विकराल।
घर-घर में हैं भरे भूत-से
भूखे नर-कंकाल॥

४३

इस कुतंत्र में तो दरिद्रता
कभी न होगी दूर।

यह कर देगा शीघ्र जाति को
निर्बल चकनाचूर।
जबतक इस कुतंत्र-बंधन से
होंगे हम न स्वतंत्र।
तबतक सिद्ध न हो सकता है
कोई हितकर मंत्र॥

४४

कैसा है सुगन्धमय सुन्दर
यह गुलाब का फूल।
पर इसकी डालों में हैं ये
कैसे तीखे शूल।
लोग चूमते चिपकाते हैं
उर से प्यारा फूल।
शूल बिना उसका कब बचता
डाल पात तन मूल?

४५

पर यह जाति नितान्त सरल है
निरी दयालु उदार।
उठा रहे हैं लोग निरंकुश
इससे लाभ अपार।
तुमको इसके उन्नति-पथ में
बहुत मिलेंगे कष्ट।
स्वार्थी सदा प्रयत्न करेंगे
करने को पथ-भ्रष्ट॥

४६

पर तुम नहीं हिचकना बेटा !
करना मन न उदास ।
रखना सदा आत्मबल ऊपर
अटल-अचल विश्वास ।
आते हैं विघ्नों के झोंके
बारम्बार प्रचण्ड ।
गिरते हैं तरु, पर रहता है
गिरिवर अटल अखण्ड ।

४७

पहिए को देखो, यदि पृथ्वी
करे नहीं अवरोध ।
क्या वह आगे बढ़ सकता है
करके भी अति क्रोध ?
विघ्नों से ही कर सकता है
उन्नति को बल प्राप्त ।
विघ्न मिटा समझो उन्नति की
गति होगई समाप्त ॥

४

विघ्नों से जाकर भिड़ जाना
सम्मुख सहना तीर ।
ऐसा साहस ही कर देगा
अमर, अभेद्य शरीर ।
जो रहती है जाति जगत में
मरने को तैयार ।

वही अमरता का पाती है
ईश्वर से अधिकार ॥

४६

बेटा ! जाओ, करो देश-हित
के सब उत्तम काम ।
शुभ अभिलाषा का देता है
ईश्वर शुभ परिणाम ।
मन उन्नत करना जनता का
मिथ्या भय कर दूर ।
संग्रह करते रहना चुनकर
सबल साहसी शूर ॥

५०

कभी किसी से घृणा न करना
मत करना बकवाद ।
विरोधियों की चाल समझना
करना नहीं प्रमाद ।
जाओ मिलकर के समाज में
काम करो चुपचाप ।
जैसा तुम्हें चाहिए वैसा
पहले बनना आप ॥

५१

देश भक्त का हृदय बड़ा ही
होता है बलवान ।
शय्या काँटों की लगती है
उसको फूल समान ।

विचलित उसे न कर सकता है
कभी मान-अपमान ।
उसे कहाँ सुधि कष्टों की है
है वह प्रेम निधान ॥

५२

इसी समय मैं भी करता हूँ
तज यह कुटी प्रवास ।
ठीक समय पर मैं पहुँचूँगा
पुत्र ! तुम्हारे पास ।
मंगलमय हो मार्ग तुम्हारा
हो तुम पूरण-काम ।
पुत्र ! सुयश की अमर गोद में
पाओ तुम विश्राम ॥

चौथा सर्ग

१

परम प्रेम-पागलिनी विजया
भरती आह उसास ।
कई मास तक रही भटकती
किया न कहीं निवास ।
वन-वन में गाती फिरती थी
चुनती फिरती फूल ।
रटती हुई प्राण-प्यारे को
गई जगत को भूल ॥

२

पल्लव,लता, कुसुम, कलियों को
करती थी अति प्यार ।
वन के पशु-पक्षी से भी वह
रखती प्रेम अपार ।
जा पहुँची पथ भूल एक दिन
एक गाँव के पास ।
था प्रभात का समय हर्ष का
पर था गाँव उदास ॥

३

जाड़े के थे दिवस, माघ का
मास, भयानक शीत ।
काँप रहे थे दीन घरों में
वस्त्र-हीन भय-भीत ।
देखा केवल चर्माच्छादित
एक मनुज-कंकाल ।
फटा पुराना एक अँगोछा
पहने परम विहाल ॥

४

बाहु-बद्ध कर पद-स्तम्भ को
चिन्ता-ग्रसित अधीर ।
घुटनों-मध्य चिबुक रख कंपित
थर-थर अबल शरीर !
आशा धरे धूप की उर मे
पीठ किये रवि-ओर ।

बैठा है, पर हाय ! निर्दयी
घिर आये घन घोर ॥

५

इस पर भी चल पड़ा तीर-सा
तीक्ष्ण तुहिन-मय पौन ।
दाँत बज उठे, सिकुड़ गया वह
हिम-उत्पीड़ित मौन ।
कहने लगा—किया था मैंने
हाय ! कौन-सा पाप ।
हे भगवान ! मिल रहा जिसका
फल है यह संताप ॥

६

वह सामने द्वार के अपने
बैठा था अति दीन ।
घर में उसकी दुखिया गृहिणी
थी तन-छीन मलीन ।
बालक एक फूल सुरभा-सा
चिपकाये थी गोद ।
उदासीनता दरिद्रता का
था आमोद-प्रमोद ॥

७

ओढ़ घास की बनी चटाई
बिछा भूमि पर घास ।
वे सोते थे पास-पास ही,
प्रायः कर उपवास ।

उसी चटाई के नीचे से,
उठकर वह कंकाल ।
आ बैठा था घाम के लिए
बाहर प्रातःकाल ॥

८

विजया आ बैठी ढिग उसके
थर-थर कम्पित गात ।
विषम हृदय-बेधक था
शीतल हिम-मय वात ।
विजया का हिम से विलोककर
करुणोत्पादक हाल ।
द्रवीभूत हो गया दया से
वह मानव-कंकाल ॥

९

घर में जाकर निज गृहिणी से
माँग चटाई घास ।
ले आया पावक पड़ोस से
वह विजया के पास ।
विजया को दी उढ़ा चटाई
निकट जला दी आग ।
विजया मोहित हुई देखकर
उस ग़रीब का त्याग ॥

१०

बैठाकर समीप वह उससे
बोली प्रेमाधीन ।

क्यों भाई ! क्या कारण है जो
तुम हो इतने दीन ।
बोला दीन उसास खींचकर
मैं हूँ एक किसान ।
साधारण खेती-बारी से
पाल रहा था प्राण ॥

११

मैं हूँ मेरी घरवाली है,
गोद एक है बाल ।
सुख-दुख से थोड़ी आमद में
कट जाता था काल ।
कई दिन हुए, एक लोकप्रिय
सज्जन पर हो क्रुद्ध ।
रच षड्-यंत्र राजभृत्यों ने
उसके मान-विरुद्ध ॥

१२

करना चाहा मुझे गवाही
देने को तैयार ।
पर मैंने असत्य-भाषण से
किया साफ़ इनकार ।
इससे मुझपर कुपित हुए वे
करके कोप कराल ।
मुझे फँसाया निरपराध ही
झूठ बनाकर जाल ॥

१३

अन्न, वस्त्र, बरतन बिकवाकर
घर में जो था माल ।
सब धन लिया छीन निष्ठुर हो
मैं हूँ अब कंगाल ।
है न एक दाना खाने को
प्रायः कर उपवास ।
सो जाता हूँ यही चटाई
ओढ़ बिछाकर घास ॥

१४

कहते-कहते व्यथित हृदय से
रोया सिसक किसान ।
विजया भी सिर नीचा करके
रोने लगी निदान ।
मन में कहने लगी—अहा !
निपट ग़रीब किसान ।
पर उदारता से भूषित है
इसका हृदय महान ॥

१५

इनकी सेवा करना ही था
प्रियतम का उद्देश ।
अब मैं उसे पूर्ण करने को
घूमूँगी सब देश ।
इनके ऊपर पड़ी हुई है
छाया अति प्रतिकूल ।

उसे हटाने ही से होगा
उन्नति का दृढ़ मूल।

१६

सेवा-धर्म मुख्य है जग में
लोक-शांति-प्रद काज।
एक दीन ने प्रबल प्रेम की
धार पलट दी आज।
प्रियतम को ढूँढ़ना वनों में
है उन्मत्त प्रयास।
वास्तव में है दीन-जनों के
सुख में उसका वास॥

१७

प्रियतम ने भी कहा यही था
कैसा वचन अमोल!
"जग ही में जाना जाता है
मनुष्यता का मोल!"
आश्वासन दे उस किसान को
विजया उठ तत्काल।
गाँव-गाँव में घूम देखने
लगी देश का हाल॥

१८

देखा उसने उसी भाँति के
अगणित नर-कङ्काल।
चिपके पेट रीढ़ से जिनके
चुचके-पुचके गाल।

विजया ने प्रण किया सुदृढ़ हो
कर प्रयत्न भरपूर ।
तन, मन से इस दीन देश का
कष्ट करूँगी दूर ॥

१६

बहकाकर इन बेचारों को
ठगते हैं ठग लोग ।
बदले में इनको देते हैं
दंड दीनता रोग ।
इनको बना ज्ञान से वंचित
वे करते हैं राज ।
हाय ! हाय ! इस अधम स्वार्थ पर
पड़ी न अब तक गाज ॥

२०

विजया सत्य प्रेम से अपना
करके काया-कल्प ।
चली लोक-सेवा करने को
होकर दृढ़-संकल्प ।
उस दिन से देखा न किसी ने
फिर उसका वह रूप ।
देख पड़ी वह एक गाँव में
संन्यासिनी - स्वरूप ॥

२१

लिये त्रिशूल हाथ में करने
चली देश-उद्धार ।

गाँव-गाँव में लगी घूमने
सेवा-व्रत उर धार ।
द्वार-द्वार पर जाकर विजया
करुणा - प्रेम - निधान ।
सबको लगी जगाने गाकर
देश-भक्ति - मय-गान ॥

२२

उसके गान अतीत-काल के
थे सुख-रूप ललाम ।
सुन करके आहें भरते थे
कृषक कलेजा थाम ।
उसके गान हृदय में भरते
थे साहस उत्साह ।
बतलाते थे स्वतंत्रता को
सुख पाने की राह ॥

२३

उसके गान-श्रवण की पक्षी-
पशु तक में थी चाह ।
उनका भी कुराज्य में सुख से
होता था न निबाह ।
उसके गान मन्त्र थे मोहक
सद्गुण-गण की खान ।
जिससे सुना वही उठ बैठा
दूर हुआ अज्ञान ॥

२४

उसके गानों ने उपजाये
सुदृढ़ साहसी शूर ।
मिटा विरोध, समाज से हुआ
दंभ, द्वेष, दुख दूर ।
उसके गान जवान श्रवणकर
कायरपना बिसार ।
होते थे स्वदेश-सेवा में
मरने को तैयार ॥

२५

जिसने भी सुन पाया उसका
हृदय-विमोहक गान ।
हुआ उसीका देश-प्रेम से
पूरण प्लावित प्राण ।
देवी मान लोग करते थे
आराधना सहर्ष ।
उसे देख उनमें जगता था
उन्नति का उत्कर्ष ॥

२६

विजया ने फिर गाँव-गाँव में
करके मंगल-गान ।
एक भाव में भरा सभी को
सुना मनोहर तान ।
विजया गई हृदय लोगों का
प्रेम-सुधा से सींच ।

उसके बाद युवक आ पहुँचा
उन गाँवों के बीच ॥

२०

उसने उन हृदयों में बोया
स्वतन्त्रता का बीज।
सींचा उन हृदयों ने उसको
स्वयं पसीज-पसीज।
मिलन नगर के आस-पास मुनि
देते थे व्याख्यान।
धर्म-स्वदेश-जाति-रक्षा को
करते थे आह्वान ॥

२८

जागे लोग सचेत हुए सब
सुन मुनि का उपदेश।
उद्यत हुए देश-रक्षा में
सहने को सब क्लेश।
किया उन्होंने एक-एक का
देश-प्रेम-मय प्रान।
होने लगा वीर-मंडल में
सुन पाया वृत्तान्त।

२७

स्वतंत्रता के लिये प्रजा जब
उत्सुक हुई नितान्त।
विजातीय शासकगण ने तब
सन पाया वृत्तान्त।

वे अतीव क्रोधातुर धाये
दलबल-सहित अपार ।
करने लगे उठे हृदयों पर
भीषण अत्याचार ॥

३०

घर विजया को, पकड़ युवा को
मुनि को डालो मार ।
गाँव-गाँव रिपुओं ने घेरा
करते हुए पुकार ।
सहते-सहते प्रजा थकी थी
दमन-दण्ड विकराल ।
देख कष्ट निज हितैषियों पर
सकी न क्रोध सँभाल ॥

३१

निकली प्रजा मिलन की घर से
क्रोधित सिंह समान ।
जन्म-भूमि की स्वतन्त्रता में
होने को बलिदान ।
आकर मिला युवक भी उनमें
बढ़ा विपुल उत्साह ।
हृदय-हृदय में देश-भक्ति का
उमड़ा प्रबल प्रवाह ॥

३२

खड़े हुए निज बैर भूलकर
भाई-भाई साथ ।

स्वतन्त्रता-दायिनी खड्ग से
भूषित थे सब हाथ ।
क्रुद्ध शत्रुओं ने जब देखा
प्रजा हुई उद्दंड ।
दौड़े वे सक्रोप देने को
उसे यथोचित दण्ड ॥

३३

सुना पूर्वजों की गुण-गाथा
भरकर शौर्य अपार ।
किया युवक ने सब लोगों को
लड़ने को तैयार ।
बढ़े कुचलने को बैरी-गण
मानो मत्त मतङ्ग ।
झपटे लोग सिंह-सम, तब तो
पलट गया सब ढंग ॥

३४

लोहू गर्म हुआ वीरों का
फड़क उठे सब अङ्ग ।
नशा वीरता का चढ़ आया
देख रक्त का रङ्ग ।
शस्त्र-सुसज्जित शत्रु अधिक थे
अल्प प्रजा बल-हीन ।
युवक स्वयं आहत था यद्यपि
दिखता था न मलीन ॥

३५

उखड़ रहे थे पैर प्रजा के
छूट रहा था धीर ।
इतने ही में मुनि आ पहुँचे
लिये असंख्यक वीर ।
गरज उठे सब सिंहनाद से
झपटे शस्त्र सँभाल ।
टिक न सके, बैरी कुछ पिछड़े
सह आक्रमण कराल ॥

३६

विजया भी भैरवी भेस में
आई धर करवाल ।
उसके साथ बहुत थे वे ही
मंत्र-मुग्ध कंकाल ।
देख सामने विषम समस्या
त्याग विजय की आस ।
रिपु भयभीत प्राण-रक्षा का
करने लगे प्रयास ॥

३७

आहत युवक थक गया, तन से
निकल रहा था रक्त ।
था तथापि वह शत्रु-मथन में
पूर्णरूप आसक्त ।
थका देखकर इस अवसर में
उठा तीक्ष्ण तलवार ।

एक ओर से एक शत्रु ने
किया अचानक वार ॥

३८

युवक न वार बचा सकता था
देख काल विकराल ।
आगे बढ़ अपनी छाती पर
ली मुनि ने करवाल ।
तब तक अरि का शीश युवक ने
मुड़कर लिया उतार ।
पर मुनि की गति देख बह चली
आँखों से जल-धार ॥

३९

विजया ने दूसरी ओर से
कर भैरव हुङ्कार ।
मार भगाया शत्रु-वृन्द को
करके कठिन प्रहार ।
प्राण बचाकर भगे शत्रु-गण
सके न पाँव सँभाल ।
पीछे लगे प्रबल प्रतिहिंसक
काल-तुल्य कङ्काल ॥

४०

मुनि थे अति प्रसन्न, उमड़ा था
आँखों में आनन्द ।
बोले—जीवन-भर में मैं हूँ
आज सुखी स्वच्छन्द ।

मेरे सम्मुख आज हमारे
वैरी भागे हार ।
स्वतन्त्रता की उषा देखकर
है आनन्द अपार ॥

४१

एक बार दुर्दम्य शत्रु से
प्रजा गई है जीत ।
तो वह सदा विजयिनी होगी
वैरी हैं भयभीत ।
तुमने अपने पूज्य पिता का
माना शुभ सन्देश ।
व्रत स्वदेश-सेवा का धरकर
किया स्वतन्त्र स्वदेश ॥

४२

धन्य भाग है पुत्र ! तुम्हारा
जीवन हुआ पवित्र ।
तुमसे हुआ यशस्वी यश भी
देख विशुद्ध चरित्र ।
अब विजया के साथ शान्ति सुख
पाओ सुयश अतीव ।
जब तुम मिले उसी दिन वह भी
थी मिल चुकी सजीव ॥

४३

पर वह कहाँ गई ? न हुआ कुछ
पता आज तक ज्ञात !

यह कह मुनि ने कही युवक से
उस दिन की यह बात ।
बोले कभी न निष्फल होगा
उसका सच्चा स्नेह ।
सच्चा प्रेम पूर्ण होता है
जग में निस्सन्देह ॥

४३

बेटा ! मैं हूँ पिता तुम्हारा
तुम न सके पहचान ।
बचपन ही में बिलग हुए थे
मेरे जीवन ! प्रान !
तुम विजया के साथ प्राण-प्रिय !
करो लोक-कल्याण ।
सुखी रहो, अब मैं करता हूँ
हर्ष-समेत प्रयाण ॥

४५

"जय स्वदेश की, जय स्वदेश की"
पड़ा सुनाई नाद ।
उसी समय मुनि ने तन त्यागा,
दे शुभ आशीर्वाद ।
"हाय ! पिता" कह गिरा भूमि पर
पितृ-भक्त मतिमान ।
धन्य पिता का प्रेम, दे दिया
पुत्र के लिए प्राण ॥

पाँचवाँ सर्ग

१

वही कुटी, सुनसान वही वन,
वही दिशा, आकाश।
उदित हो रहा था प्रभात में
रवि का अरुण प्रकाश।
मूर्च्छित था विजया के उरु पर
सिर रख युवक प्रवीन।
वह उसका मुख देख रही थी
आशा धार नवीन॥

२

कुछ-कुछ होने लगी युवक की
मूर्च्छा अन्तर्द्धान।
तब वीणा-वाणी विजया ने
गाया मङ्गल-गान।
एक बार दृग खोल युवक ने
पुनः कर लिया बन्द।
विमल चन्द को निकट देखकर
उसे हुआ आनन्द॥

३

जड़ चेतन की एक अकृत्रिम
भाषा है ध्वनि-हीन।
उसे बोलते हैं आपस में
केवल प्रेम-प्रवीन।

'चन्द चूम लूँ' बोला मन में
जैसे ही आनन्द ।
आकर लगा तुरत ओठों से,
मधुर सुधाधर चन्द ॥

शब्दार्थ

पहला सर्ग

पद्य १

निस्तब्ध = चुप

पद्य २

प्रणयी = प्रेमी
निकेत = घर

पद्य ३

आसीन = बैठे हुए
आसन्न-भयाकुल = निकट भय से व्याकुल

निर्निमेष = एकटक

पद्य ६

वलयित = घेरा डाले हुए
प्रस्फुटोन्मुख = खिलने को तैयार

पद्य ६

कृपाण = तलवार
अवसान = अन्त

पद्य ११

अविराम = बिना विलम्ब

पद्य १३

प्रतिमा = मूर्त्ति

पद्य १४

पीयूष = अमृत

पद्य १६

मीच = मृत्यु

पद्य २०

अवनता = झुकी
कर्तनकर = काटकर

पद्य २१

मुकुर = दर्पण
गिरा-गौरता = वाणी का गोरापन

पद्य २३

तड़ित = बिजली

पद्य २६

बिहङ्ग = पक्षी
कुरङ्ग = मृग

पद्य ३१

तरङ्गिणी = नदी
सत्वर = शीघ्र

पद्य ३२

नितान्त = बिलकुल

व्योम = आकाश
वारि = जल

पद्य ३३

विक्षिप्त = पागल
अविरत = लगातार

पद्य ३७

उभय = दोनों

पद्य ३८

जीवन = जल, प्राण
पयोद = बादल

पद्य ३६

अशुरागि = सूर्य

पद्य ४०

पाथ = जल
तरी = नौका

दूसरा सर्ग

पद्य २

क्षितिज = वह स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी मिले दिखाई पड़ते हैं।
तन्द्रा = आलस्य
ललाम = सुन्दर

पद्य ३

महामहिम = बड़ी महिमावाले

पद्य ६

प्रबाल = मूँगा

पद्य ६

द्रुतपद = जल्दी - जल्दी क़दम बढ़ाते हुए
अन्वेषण = खोज
समग्र = सब

पद्य १०

क्लान्त = थकी हुई
उद्भ्रान्त = व्याकुल

पद्य १२

आलोक = प्रकाश

पद्य १५

अवरोध = रोक

पद्य १६

ओक = घर

पद्य २०

आह्लादित = प्रसन्न

पद्य २२

समुज्ज्वल = ख़ूब चमकती हुई

पद्य २३

मित्र = सूर्य, प्रेमी

कल-कलस्विनी = कलकल शब्द करनेवाली

पद्य २६

अनन्त = आकाश

पद्य २७

विपन्न = दुःखी

पद्य २९

भोर = सवेरा

पद्य ३१

हेमाङ्गिनी = सुवर्ण के-से अङ्गवाली

पद्य ३२

वेष्टनकर = लपेटकर

तीसरा सर्ग

पद्य २

द्रुत = शीघ्र

उपचार = उपाय

पद्य ३

किसलय = कोमल पत्ते

साधरी = चटाई, बिछौना

प्रतीक = मूर्त्ति, शरीर

पद्य ४

पाथ = रास्ता

पद्य ५

निमिष = पल, क्षण

पद्य ६

शोणित = रक्त

पद्य ७

परिघ = एक शस्त्र

पृथुल = मोटा

पद्य २३

क्रोड़ = गोद

पद्य २४

उत्कोच = रिश्वत

पद्य ३०

कुतन्त्र = कुराज्य

क्रान्ति = बगावत

पद्य ३४

स्वच्छन्द = स्वतन्त्र

पद्य ३६

आह्लाद = सुख

पद्य ३८

अनुभूत = अनुभव किये हुए

पद्य ४०

यन्त्रणा = दुःख

पद्य ४४

शूल = काँटा

चौथा सर्ग

पद्य ३

चर्माच्छादित = चमड़े से ढका हुआ

पद्य ४

पद-स्तम्भ = पैर-रूपी खम्भा

चिबुक = ठुड्डी

पद्य ८

करुणोत्पादक = दया उत्पन्न करने वाला

द्रवीभूत = पिघला हुआ

पद्य ११

भृत्य = सेवक

पद्य १७

आश्वासन = तसल्ली

पद्य १६

गाज = वज्र

पद्य ११

अतीत = गत; बीता हुआ

पद्य २५

प्लावित = डूबा हुआ

आराधना = पूजा

उत्कर्ष = उत्साह

पद्य ३३

मतंग = हाथी

पद्य ३७

आसक्त = लगा हुआ

पद्य ३८

करवाल = तलवार

पद्य ४१

दुर्दम्य = जो कठिनता से दबाया जा सके।

पाँचवाँ सर्ग

पद्य १

उरु = जङ्घा

पद्य ३

अकृत्रिम = जो बनावटी न हो

सुधाधर = चन्द्रमा

हिन्दी मन्दिर प्रयाग
की पुस्तकें

१. पथिक
२. स्वप्न
३. पेखन
४. मिलन
५. हिन्दी पद्य रचना
६. आगे बढ़ो
७. दिव्य जीवन
८. फांसी
९. कन्या-शिक्षा
१०. व्यावहारिक सभ्यता
११. आधुनिक भारत
१२. हिन्दुओं के व्रत और त्यौहार
१३. हिन्दूधर्मकी आख्यायिकायें
१४. समश्लोकी गीता

मूल्य
बारह आना